Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

उत्तराखंड के लोकगीतों में जीवन का राग-रंग

मोनिका पन्त
पीएच.डी. शोधार्थी साहित्य
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविध्यालय वर्धा, महाराष्ट्र , भारत

भारतीय संस्कृति की आत्मा लोक जीवन में निहित है। हमारा देश विविधताओं से भरा हुआ है यहाँ विभिन्न धर्म, जाति, संस्कृति, कलाओं की अपनी विशेष पहचान है। हर राज्य अपनी एक विशेष व महत्वपूर्ण संस्कृति के साथ विध्यमान है। भारत में लोक का विशेष महत्व है। लोक का सामान्य अर्थ 'जन' एवं 'स्थान' से है। शब्द की दृष्टि से 'लोक' का विवेचन करें तो यह संस्कृत की 'लोक' धातु से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है - 'देखना'। अंग्रेजी शब्द 'फोक' (Flok)और जर्मन शब्द वोक (Volk) का यह पर्याय है। इन भाषाओं में भी 'लोक' शब्द का अर्थ देखने से ही है। लोक का अर्थ जब देखने से लिया जाता है तो यह 'देखना' एक प्रकार से जिज्ञासा के लिए देखना नहीं है वरन् देखने में अपनत्व का भाव है। 'अपना' मानकर,'अपनेपन' के भाव के साथ देखना एक प्रकार से मन की भाषा है और उसका अर्थ ही है, 'लोक'।[i] 'लोक' शब्द के संदर्भ में बच्चन सिंह कहते हैं कि "लोक एक भौगोलिक शब्द है। इसे लेकर विविध लोक की कल्पना की गयी है। ऋग्वेद में (3/53/21) लोक जीवन एवं जगत के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इससे इतर वेदों में दिव्य और पार्थिव लोक की कल्पना की गयी है। उपनिषदों में दो लोक माने गए हैं - इहलोक और परलोक। निरुक्ति में तीन लोक का उल्लेख मिलता है - पृथ्वी अंतरिक्ष और द्युलोक। दूसरे शब्दों में इन्हें भू:,भुव:,और स्व: कहते हैं। पौराणिक कालों में सात लोक एवं सात पातालों का उल्लेख मिलता है। चूंकि अब परलोक की कल्पना, कल्पना मात्र रह गयी है, अत: लोक 'इहलोक' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। लोक धर्म कहने से लोक का अर्थ जनसामान्य हो जाता है।"[ii] हजारी प्रसाद द्विवेदी 'लोक' को कई आयामों में देखते हैं। उनके लिए यह अधिकांश जन की आस्था, अस्मिता, और आकांक्षा को सींचने वाली ऊर्जा हैं। 'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था' निबंध के अंतर्गत शुक्ल जी काव्य में लोक की प्रतिष्ठा करते हैं। नामवर सिंह लोकजीवन को ऐसी शक्ति मानते हैं जो सामाजिक गतिरोध को तोड़ने के साथ ही साहित्यिक गतिरोध को भी समाप्त करती है। लोकजीवन से सम्बन्धित अनेक संस्कृतियों,परम्पराओं,अनुभूतियों,भावनाओं आदि मानवीय व प्राकृतिक स्वरूप को लोकसाहित्य ने विस्तार दिया है जिनमें लोकगीत-संगीत,लोकनृत्य,लोकवादन,लोककथाओं-गाथाओं आदि अधिकांश मौलिक कलाओं ने अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिती

दर्ज की है। उत्तराखंड का लोकजीवन भी इन समस्त कलाओं से परिपूर्ण अपनी एक विशेष पहचान रखता है। यहाँ मुख्यतः उत्तराखंड के लोकगीतों पर बात की जाएगी।

लोकगीतों में भौगोलिक परिस्थितियों का स्थानीयता का बहुत महत्व होता है। इनके माध्यम से ऐतिहासिक संदर्भों को सँजोया जा सकता है। जिससे पीढ़ी दर पीढ़ी को अपनी परंपरा को समझने में सहायता मिलती रहे। लोक गीतों में धरती, पहाड़, हरे-भरे खेत, नदियां समाहित हैं। उत्सवों में, मेलों में, विविध ऋतुओं एवं परम्पराओं में लोक गीत गाये जाते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोकगीतों को आर्येतर सभ्यता की वेदश्रुति कहा है। महादेवी वर्मा इन्हें सुख-दुख की भावापूर्ण अवस्था मानती हैं। डॉ नंदलाल कल्ला का मानना है कि "लोकगीत किसी भी राष्ट्र की संस्कृति का प्रदीप्त करने वाली सुरीली बानगी है।"[iii] लोकगीतों में आशा-निराशा, सुख-दुख, प्रेम-नफरत, उल्लास-उमंग, संयोग-वियोग के भावों को सहजता, सरलता के साथ पिरोया जाता है। लोकगीत से तात्पर्य ऐसे गीतों से है जो जनमानस के हदय के भावों को सहज अभियक्ति देते हैं। डॉ कृष्ण नन्द जोशी के अनुसार – "लोक गीत धरती के गीत हैं, और धरती, हम उसे चाहे जिस नाम से भी जानते हों, वही माटी की धरती है। मानव किसी प्रदेश में,किसी अंचल में रहे मानव है। उसके सुख-दुख, उल्लास-वेदना, उसकी भावनाएं बहुत कुछ समान है। वह अपनी प्रसन्नता मुस्कान में बिखेरता है और उसके दु:ख दर्द की कहानी उसके आँसू ही कहते हैं।"[iv] उत्तराखंड के लोकगीतों में यहाँ के जनमानस के दर्द उसके संघर्ष की गाथा के साथ ही हंसी, ठिठोली, जिजीविषा की पराकाष्ठा भी शामिल है। लोकगीतों के महत्व को बताते हुए देवसिंह पोखरिया का कहना है कि "लोकगीतों की सांगीतिक मूर्छना, शब्दार्थ को न समझने वाले व्यक्ति को भी गीत के भाव,रस, विषय, और अनुभूति, को श्रोता तक संप्रेषित करने में समर्थ रहती है। गीतों में निहित संगीत के माध्यम से श्रोता उस मनोभूमि के स्पर्श का अनुमान लगा लेता है, जिस आधार पर गीत के बोल गाए जा रहे हैं।"[v] उत्तराखंड अपने अद्भुत सौंदर्य के लिए विश्वविख्यात है उसी तरह यह अपनी विशेष व भिन्न संस्कृति के लिए भी जाना जाता है। यहाँ विविध अवसरों के लिए विभिन्न लोकगीत गाए जाते हैं। राज्य के लोकगीतों में कुमाऊँनी व गढ़वाली बोलियों के साथ ही ब्रज,अवधि व खड़ी बोली का भी मिश्रण है। उत्तराखंड के प्रमुख लोकगीत इस प्रकार हैं –

संस्कार गीत - उत्तराखंड में किसी भी शुभ कार्य की शुरुआत 'शकुनाखर' मंगलगीत गाकर की जाती है। यहाँ नामकरण, उपनयन, विवाह संस्कार का विशेष महत्व है। इन अवसरों पर गणेश को दूब चढ़ाने के बाद मंगलाचरण में महिलाओं द्वारा शकुनाखर गाया जाता हैं इन्हें गाने वाली महिलाओं को 'गिदार' कहा जाता है -

शकुना दे, शकुना दे, काजौ यो अति नीको,
ओ रंगीलो! पाटलें आंचली कमल को फूल
सोई फूल ओलावंत आद्य हमरो होलो

सोई फूल मोलावंत सिद्धि गणेश।

इसी तरह देवी-देवताओं को शुभ काम में निमंत्रण देने के लिए भी गीत आए जाते हैं। दीप जलाने व उसके समान अखंड ज्योति पूरे परिवार में जगमग रहने की कामना की जाती है –

साँज पड़ी संजवाली पायी चली ऐनवास पास मोत्यूँ हार, बीच चलिन

गंगा,लछिमि पूछना छन स्वामी, आपणा नाराइण, किनुं घरी आनंद।

इसी तरह यहाँ बधाई के गीत भी गाए जाते हैं। भगवान को स्मरण किया जाता है। उपनयन संस्कार व विवाह में कर्मकांड व संस्कारों से सम्बन्धित गीत गाए जाते हैं। जिस तरह से यह कार्यकर्म होते रहते हैं उसी रिवाज के अनुरूप महिलाओं द्वारा गीत गाए जाते हैं। इनमें अतुकांत, पुनरावृति व स्वरों में पंचम का विशेष स्थान है। इन गीतों की लय काफी, भूपाली, पहाड़ी, तिलक, सोरठा, वृंदवानी सारंग आदि रागों के स्वरों से साम्य रखती है। पहाड़ी भाषा के 'मांगल' ताल रहित होते हैं।[vi] कुमाऊँनी लोक साहित्य में अन्त्येष्टि संस्कार से संबंधित कोई गीत नहीं मिलता, किन्तु भोट-प्रान्तर में 'ढुरिड.' या 'अम्हरम' महत्वपूर्ण गीत है। इसी प्रकार जोहार-दारमा अंचल के लोकगीतों में कृषि-संबंधी गीतों का अभाव है क्योंकि वहाँ की भौगोलिक स्थितियाँ कृषि के अनुकूल नहीं है वहाँ की जीविकोपार्जन का प्रमुख साधन भेड़- बकरी पालन तथा उनसे प्राप्त ऊन का व्यवसाय रहा है।[vii]

होली गीत - उत्तराखंड में बसंत पंचमी से रात में सामूहिक 'बैठकी' होली गीत गाये जाते हैं। रंगभरी एकादशी से होली के दिन तक पूरे पाँच-छः दिन 'खड़ी' होली एक-दूसरे के घर ढौल, मंजीरे वाद्ययंत्रों के साथ गायी जाती है। यह होली गीत भक्तिपरक गीतों से प्रारंभ होते हैं, जिसमें गणेश, शिव, राम, कृष्ण संबंधी देवताओं का स्मरण किया जाता है। यहाँ होली गीतों में ब्रज व खड़ी बोली का अधिक प्रभाव है। भक्ति के साथ ही श्रृंगार के दोनों रूप संयोग व वियोग में भी होली गीत गाये जाते हैं। हालांकि अब इनमें अश्लीलता व आधुनिकता का प्रभाव भी होने लगा है। पहाड़ी बोली में रचित अधिकांश होली गीत लुप्त हो चुके है -

तुम सिद्धि करो महाराज होली के दिन में

गणपती गौरी गणेश मनाऊँ, घर-घर को शुभ काज

होली के दिन में, तुम सिद्धि.....।

इस गीत से प्रारम्भ होने वाली होली सबके घरों में सुख-समृद्धि के लिए भगवान को स्मरण करती है। साथ ही प्रेयसी को रिझाने, उनकी शिकायत करने के गीत भी इनमें शामिल हैं –

मलत मलत नैना लाल भये सखी डारो नयन में गुलाल, बय्यां मोरे डारो नयन में गुलाल।

इसी तरह यहाँ कृष्ण की प्रेयसी गोपियों की तरह कृष्ण की शरारत को भी प्रेमपूर्ण हंसी-ठिठोली की उलाहना देते होली गीत भी गाये जाते हैं -

हाँ हाँ हाँ मोहन गिरधारी। हाँ हाँ हाँ...

ऐसो अनाड़ी चुनर गयो फाड़ी

ओ हो हंसी हंसी दे गयो गारी, मोहन गिरधारी

हाँ हाँ हाँ मोहन गिरधारी....।

ऋतुगीत - यहाँ चैत माह में बसंत के आगमन का उल्लास मनाया जाता है। दलित जाति की स्त्रियाँ इस महीने में सवर्णों के घरों में जाकर ऋतुगीत गाती है। उनके मुंह से ऋतुगीत सुनना शुभ माना जाता है। बदले में उन्हें पैसे,कपड़े व अनाज दिया जाता है। इन गीतों में विवाहित स्त्रियों को अपने मायके के स्मरण की गाथा गाकर सुनाई जाती है। साथ ही इस माह यहाँ 'फूलदेई' का त्योहार मनाया जाता है। जिसमें गाँव के बच्चे विशेषकर लड़कियां फूल, चावल लेकर गाँव में सबके घरों की दहलीज में बिखेरती हुई गाती है -

फूलदेई छम्मा देई,

दाहिने हो द्वार, भरे रहें भंडार,

तुझ देहरी को नमस्कार, तुझ देहरी को नमस्कार,

यह लोकगीत नए मौसम के आगमन का स्वागत करता नई कृषि की उन्नति की कामना करता, हरी-भरी खुशियों के आगमन का परिचायक है।

न्यौली गीत - 'न्यौली' गायन में 'सोरयाली' व 'रीठागाड़ी' दो शैलियां प्रचलित हैं। यह प्रेम गीत होते हैं। ज़्यादातर इनमें विरह के गीत गाए जाते हैं। गीतों के बीच-बीच में गाना जोड़ना 'जौड़' डालना कहा जाता है, इन्हें वनों के गीत भी कहा जाता है। न्यौली में दोनों चरण 14-14 वर्ण के होते हैं, पर जौड़ में पहला चरण 6 और दूसरा 14 वर्ण का होता है। कुमाऊँ में न्यौली गीतों में प्रेमी-प्रेमिका के बीच आपसी संवाद में गीत गाया जाता है उसी तरह गढ़वाल में 'बाजूबंद' या जंगी गीत लंबे आलापों में गाया जाता है।[viii] यह गीत बिना किसी वाद्ययंत्र के स्वर-विस्तार रूप में गाए जाते हैं। जीवन के विविध उतार-चढ़ाव के प्रति मानव-मन के भावों उसके एकाकीपन, असहायता का स्वर इनमें व्यंजित होता है –

पारा भींणा कांकड़ मारो, शीशे की गोली लै।

म्योर जन्म त्वीलै हालो, तो मीठी बोली लै॥

(पशु को मारने के लिए शीशे की कठोर गोली का आघात चाहिए। मैं तो मनुष्य हूँ तेरे मीठे बोल तो मेरे लिए गोली से भी अधिक घातक है)

न्यौली गीतों की पहली पंक्ति मानवीय या प्राकृतिक भावरूप में कही जाती है। दूसरी पंक्ति में अभियक्ति भाव पाकर ही पहली पंक्ति सार्थक हो जाती है। न्यौली गीतों में वियोग की प्रधानता के कारण कुछ ऐसे विषय भी जुड़ जाते हैं, जिससे निराशा, भाग्यवादिता, दार्शनिकता, पुनर्मिलन हेतु पुनर्जन्म का लोकविश्वास, हताशा, विषाद, पारिवारिक-सामाजिक आदि बंधनों की विवशता झलकती है।[ix] इन लोकगीतों में प्रकृति के विविध रूप बदलते हुए मौसम, पशु-पक्षियों, नदी, वृक्षों को प्रतीक रूप में दर्शाया जाता है।

भगनौल गीत - यह मुख्यतः प्रेम व सौंदर्य पर आधारित गद्य काव्य है। इसमें मुख्य गायक पंक्तियों को जोड़ता हुआ एक केंद्रीय उक्ति या टेक पर आलाप करता है, बाकी लोग उसी को दुहराते है। भगनौल खड़े होकर एक-दूसरे को संबोधित करते हुए गाए जाते हैं। यह गीत पुरुषों द्वारा ही गाया जाता है, मुख्य गायक का साथ देने वालों को 'हेवार' कहा जाता है। डॉ. त्रिलोचन पांडे ने शैली की दृष्टि से भगनौल के कई रूप माने हैं। उनके अनुसार – कहीं तो प्रथम दो सार्थक पंक्तियाँ इसकी टेक बनती हैं, बाद में छंद कहने के उपरांत अन्य लोग सस्वर उनकी पुनरुक्ति करते हैं। दूसरे प्रकार के 'भगनौल' छंद बद्ध होते हुए भी तुकांत रहते हैं। बीच की पंक्तियाँ गद्य की तरह सुनाकर अंतिम शब्द की तुक मिलाई जाती है। तीसरा रूप छंद प्रधान होता है जिसमें केवल दो-दो पंक्तियों के जोड़ हुआ करते हैं। यही पंक्तियाँ मूलरूप में गायक की कल्पना को विस्तार देती है –

मारी हैछ माखी,

तराजु में तोली दिये, कैकी माया बाँकी।

भगनौल के चौथे रूप में कभी संबद्ध तो कभी असंबद्ध पंक्तियों के योग से 'तुकांत' बन जाता है। यहाँ यह किसी दृश्य या किसी घटना पर आधारित भावपूर्ण श्रृंगारिक चित्रण के साथ जीवन के यथार्थ को भी उजागर करते हैं –

कैरवै की कानी,

चार दिना ज्वानी माँजी, आँखी बुजी जानी।

भगनौल गीत गाते हुए हुड़का वाद्ययंत्र बजाया जाता है। इसमें नृत्य तो नहीं किया जाता है लेकिन भाव-भंगिमा द्वारा सामूहिक गीत गाए जाते हैं।[x]

झोड़ा गीत - यह नृत्य करते हुए गाया जाता है विशेषतः यह नृत्य गीत ही है। झोड़ा शब्द का मूल हिन्दी का 'जोड़' या 'जोड़ा' शब्द है। इन गीतों को गाते हुए सामूहिक नृत्य करते हुए हाथों को एक-दूसरे के हाथों से जोड़कर वृताकार घेरे में घूमते हुए गाया जाता है। यहाँ हर शुभ अवसर पर 'झौड़ा' नृत्यगीत महिलाओं व पुरुषों द्वारा किया जाता है।

ओ दीदी,ओ भुलू,ओ ब्वारी

मड़ुवा काटण हैगो,तल सारी।

इन गीतों में कृषि, जंगल, सामाजिक परिस्थितियों, भगवान की प्रार्थना, मनोभावों आदि को व्यक्त किया जाता है। झौड़ों में कभी कमर को झुकाकर, कभी पूरे शरीर को लहर देते हुए,कभी सिर को दाएं-बाएं झुलाते हुए,कभी बाएं तो कभी दाएं झुकते हुए नृत्य किया जाता है।[xi] यह काफी हद तक छतीसगढ़ व झारखंड में किए जाने वाले 'डमकच' व 'झूमर' नृत्यों से मिलता है।

बैर गीत - बैर गाने वालों को 'बैरिया' कहा जाता है। बैर का अर्थ द्वंद या संघर्ष है। गायकों के बीच गीत शैली में पहेलियां बुझाने जैसे वाक् युद्ध होते हैं । इसमें एक-दूसरे से सवाल-जवाब का दौर चलता रहता है । यह धार्मिक,ऐतिहासिक,सामाजिक,तथा मानवीय संवेगों से जुड़े हुए होते हैं । बैरिया किसी भी अद्भुत, विरोधपूर्ण, विसंगतिपूर्ण, चमत्कारपूर्ण, आश्चर्यपूर्ण घटना या दृश्य का वर्णन करते हुए अपने प्रतिद्वंद्ध बैरिया से सवाल करता है और जवाब में आलाप के साथ दूसरा बैरिया भी उससे सवाल करता है। इन गीतों द्वारा उक्ति वैचित्र्य एवं तार्किक शक्ति से श्रोताओं का मनोरंजन किया जाता है।[xii] इस लोकगीत में तर्क प्रधान मुक्तक गीत शैली का प्रभाव है, जिसमें इतिहास, पुराण, व्यक्ति, समाज, घटना, दृश्य, प्रकृति, जनजीवन आदि का रोचक वर्णन किया जाता है, ज़्यादातर इन गीतों का आयोजन मेलों में किया जाता है।

इसके अतिरिक्त यहाँ खेतों, जंगलों में श्रम करते हुए लोकगीत गाकर अपने कष्ट को कम करने व सामूहिक रूप में काम करते, गाते हुए काम के बौझ को हल्का करने के लोकगीत मौजूद हैं। जिन्हें 'हुड़कीबौल' कहा जाता है। इसमें 'बौल' का अर्थ 'श्रम' माना जाता है। सीमांत भोटिया क्षेत्र में कृषि गीत में कल्या-मल्या नामक बैलों को गायन के अनुसार खेतों में चलने और मुड़ने को कहा गया है। यह लोग फसलों की सुरक्षा के लिए 'मिल्वू-च्वूकू' नामक गीत गाते हैं।[xiii] इसके अतिरिक्त झूमैलो (छौपती, लामण) गीतों में नारी के दुख उसकी विरह वेदना का दर्द है। 'खुदेड़' गीत विषादपूर्ण बाल विवाह की प्रथा से पीड़ित महिलाओं की दुखद वेदना को उजागर करता है –

जावा गैलाण्यों,तुम मैत जावा,
मेरो रैबार, माँजी मू लि जावा।
मालू भैंसी को खटी दई,
बई मा बोल्यान रोणीक छई।
बाबाक बोल्यान देखीक जाई,
सासु सैसरों समझाई जाई॥[xiv]

यहाँ एक विवाहित पीड़ित स्त्री अपनी सहेलियों से मायके जाकर मेरा मायके वालों को याद करने व संदेश उन तक पहुंचा दो कि मुझे उनकी बहुत याद आती है। वह एक बार मेरे ससुराल आकर सास-ससुर को मेरे साथ अच्छा व्यवहार करने के

लिए इन्हें समझा जाएँ। विरह के गीत के साथ ही यहाँ हास्य व व्यंग्य लोकगीत भी विद्यमान हैं लेकिन यहाँ के अधिकांश लोकगीतों में अतीत के सुखद प्रसंगों की याद से उभरी उमंग और विषाद की मिश्रित भावना का समावेश ज्यादा दिखाई देता है।

उत्तराखंड के लोकगीतों में जीवन व समसामयिक स्वरूपों की सफल अभियक्ति मिलती है। यह यहाँ के लोकमानस के मनोभावों उसके जीवन की परिस्थितियों को भावपूर्ण अभियंजना देते हैं। लोक जीवन की परिधि के केंद्र में मानव है और मानव की समस्त भाव भंगिमाओं को लोकगीतों के माध्यम से समझा जा सकता है। यहाँ के लोग आस्थावान व जिजीविषा के धनी होते हैं इसलिए उनके गीतों में भी संघर्षमय जीवन के बावजूद जीवन जीने की ललक दिखती है। यहाँ के लोग अपने कष्टों को इन गीतों के माध्यम से विभिन्न पर्व,मेले,उत्सवों के साथ ही नहीं बल्कि खेत,जंगल,नदी के साथ सँजोकर जीवन जीने की प्रेरणामय लगन में मगन रहते दिखाई देते हैं। आंचलिक विशिष्टता का प्रभाव यहाँ के लोकगीतों में समाहित है। लेकिन दुखद कि इन लोकगीतों का क्षरण बहुत तेजी से होता जा रहा है। यहाँ की अधिकांश युवा पीढ़ी का अपने लोकगीतों के प्रति रुझान बहुत कम होता जा रहा है। पहाड़ का व्यक्ति अपनी लोकसंस्कृति को भुलाता हुआ इन गीतों के मूल स्वरूप के साथ छेड़छाड़ करता हुआ रीमिक्स की धुन में यहाँ की संस्कृति के अस्तित्व पर आघात कर रहा है। गुमानी पंत, गोर्दा, गिर्दा, तारादत्त पांडे,नरेंद सिंह नेगी,कबूतरी देवी जैसे लोकगायकों ने उत्तराखंड की इस लोकसंस्कृति को समृद्ध करने में अभूतपूर्व योगदान दिया है। लोकगीतों के मूल को सँजोते हुए उसे स्मरण रखने, विस्तार देने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[i] व्यास,डॉ.अरुणा.(2016).लोक संस्कृति,समाज एवं परिस्थितिकी संतुलन.जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी.पृ. सं. 29

[ii] सिंह,बच्चन.(2010).आधुनिक आलोचना के बीज शब्द. दिल्ली:वाणी प्रकाशन. पृ. सं. 98

[iii] यादव,गोविंद.लोकबिंब,(लोककला,साहित्य और संस्कृति की त्रैमासिक पत्रिका).जुलाई-सितंबर-2017 अंक. नई दिल्ली. पृ.सं 69

[iv] जोशी,डॉ. कृष्णा नन्द. कुमाऊँ का लोक साहित्य. बरेली: प्रकाश बुक डिपो. पृ. सं. 9

[v] पोखरिया, देवसिंह. (2009). उत्तराखंड लोक संस्कृति और साहित्य. नई दिल्ली. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत. पृ. सं.343

[vi] वही, पृ. सं. 345

[vii] जोशी,डॉ. कृष्णा नन्द. कुमाऊँ का लोक साहित्य. बरेली: प्रकाश बुक डिपो. पृ. सं. 11

[viii] पोखरिया, देवसिंह.(2009). उत्तराखंड लोक संस्कृति और साहित्य. पृ. सं. 345

[ix] बिष्ट,शेरसिंह. (2014). कुमाउनी. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी. पृ. सं. 151

[x] वही,पृ. सं. 152

[xi] पोखरिया, देवसिंह. (2009).उत्तराखंड लोक संस्कृति और साहित्य. नई दिल्ली. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत.पृ. सं.329

[xii] बिष्ट,शेरसिंह. (2014). कुमाउनी. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी. पृ. सं.160

[xiii] पोखरिया, देवसिंह. (2009). उत्तराखंड लोक संस्कृति और साहित्य. नई दिल्ली. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत. पृ. सं.235

[xiv] रुवाली,केशवदत्त. (2015). गढ़वाली. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी. पृ. सं. 147